ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. No.- 339-345

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

रीतिकाल की काव्य चेतना

डॉ0 आभा श्रीवास्तव

असिस्टेंट प्रोफेसर– हिन्दी विभाग, श्री सुदृष्टि बाबा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सुदिष्टपुरी–रानीगंज, बलिया (उ0प्र0), भारत

Received-21.12.2022, Revised-25.12.2022, Accepted-30.12.2022 E-mail: uditasrivastava11@gmail.com

सारांशः ***रीतिकाल का लालन पालन राजाओं और रइसों के आश्रय में हुआ। सामंतीय वातावरण के कारण इस काल के कवियों में भक्तिकाल की कवियों की संतन को कहा सीकरी तो काम के घोषणा करने के लिए उर्जस्विता न रह गयी थी, बल्कि ठीक इसके विपरीत सीकरी जैसे राजस्थानों में निवास करने में गर्व समझते थे।***

यह भी एक तथ्य है कि किसी युग की विशिष्ट परिस्थति हीं विशेष प्रकार के साहित्य को जन्म देती है। किन्तु इन परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप ऐतिहासिक घटनाक्रम के समान साहित्य की प्रवृति कोई आकस्मिक घटना या उसका परिणाम नहीं हुआ करती उसके भूल में सतत् विकासमान परम्परा भी विद्यमान रहती है।

डॉ0 महेन्द्र कुमार के शब्दों में "जिस प्रकार वासना रूप में विद्यमान स्थायी भाव अपन अनुकूल काव्यों का अवलम्ब प्राप्त कर स्वतः जाग्रत होकर उदीह हो उठता है उसी प्रकार परम्परा रूप में उपस्थित प्रकृति विशेष की किसी युग में अपने अनुरूप वातावरण प्राप्त कर उस युग में प्रतिनिधि साहित्य का प्राप बन जाती है।"

कुंजीभूत शब्द– रीतिकाल, सामंतीय वातावरण, भक्तिकाल, उर्जस्विता, गर्व, विशिष्ट परिस्थति, साहित्य, ऐतिहासिक घटनाक्रम।

ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर पता चलता है कि हिन्दी के वीरगाथा काव्य, संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश के चरित काव्यों का ज्ञानाश्रयी शाखा की रचनायें, सिद्धो और नाथो की रचनाओं का प्रेम मार्गी शाखा के काव्य मुसलमानों की चिश्ती सम्प्रदाय के सिद्धान्तों जैनाचार्यों की प्रेमकथाओं के रूप क सगुप भक्ति साहित्य, पुराणो ऐतिहासिक काव्यों तथा वेदान्त दर्शन की विविध व्याख्याओं के समन्वित रूप का एवं आकस्मिक साहित्य की विविध विधायें और उनकी प्रवृत्तियों पाश्चात्य साहित्य और उसके पूर्ववर्ती रीतिग्रंथों में परम्पराओं की विकास की परिणाम कही जा सकती है इसके अलावा युग परिवर्तन के साथ जब नवीन प्रवृत्ति का अविर्भाव होता है तो प्रचलित प्रवृत्ति क्रमशः क्षीण होती हुई यद्यपि समाप्तप्राय हो जाती है तथापि उसके अवशेष भावी युगों में चलते जाते हैं। हिन्दी साहित्य के विभन्न युगों की प्रवृत्तियों को बाद के युगों में विद्यमान मिलना इसकी पुष्टि के लिए पर्याप्त है। इस प्रकार सहित्यिक आरोह–अवरोह की प्रक्रिया से यह स्पष्ट होता है कि भक्ति काल अपनी चरम विकास की अवस्था में रीति युग की प्रवृत्तियों को प्रकट करने लगा था। भक्तिकाल में भक्ति और श्रृंगार को परस्पर किस प्रकार आदान–प्रदान एवं उत्कर्ष–अपकर्ष अबाध गति से जारी था यह उस युग के साहित्य को देखने से सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि उस युग में अनेक प्रवृत्तियॉं संचारित हो रही थी लेकिन उनमें भक्ति की प्रवृत्ति ही सर्वप्रधान थी उसके साथ भक्ति का संबल ग्रहण करके श्रृंगार, रीति, नायिका भेद, नख–शिख, षडऋतु तथा अलंकार आदि का भी संचार हो रहा था। आगे चलकर रीतियुग में इन सभी प्रवृत्तियों का विकास हुआ किन्तु प्रधानता रीति श्रृंगार की ही हो गई और शेष प्रवृत्तियॉं सहायक रूप में विद्यमान रही। "साहित्यिक प्रवृत्तियों और वादो का प्रवर्तन भौतिक घटनाओं के समान किसी एक तिथि पर नहीं होता अतः उसके उद्भव की सीमा एक सुनिश्चित तिथि या संवत न होकर व्यापक काल परिधि में सन्निविष्ट रहती है। एकही काल में साहित्य जगत में अनेक प्रकार की प्रवृत्तियां या विचारधारायें प्रचलित रहती हैं उनमें जो प्रवृत्ति या विचारधारा प्रबल होकर सबसे अधिक व्याप्त हो जाती है उसी के आधार पर उस काल का नामकरण और सीमा निर्धारण किया जाता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास का विभिन्न कालों का उदाहरण के रूप में ले सकते है। वीरगाथा काल से लेकर आधुनिक काल तक विभिन्न प्रकार की पद्धतियों को समय–समय पर उदित और अस्त होती रही। एक समय में एक या दो से अधिक प्रवृत्तियां विद्यमान रही पर जो प्रवृत्ति मुख्य एवं स्वतंत्र रूप से संचारित थी उसी के आधार पर इतिहास विज्ञों ने काल का निर्धारण एवं नामकरण किया। वीरगाथा काल के बाद भक्ति काल का प्रणयन आरम्भ हुआ किन्तु वीर रस की रचनाओं का सर्वथा अभाव नहीं हुआ, पर सीमा निश्चित करते समय प्रवृत्ति की प्रधानता को ही दृष्टि में रखा गया गौड़ प्रवृत्तियों को छोड़ दिया गया। भक्तिकाल में श्रृंगार की रसधारा प्रवाहित की जिसमें भक्तिभाव सर्वथा विभज्जित हो गया। किन्तु प्रवृत्ति की दृष्टि से इन कृष्ण भक्त कवियों के काव्य की आत्मा श्रृंगारिक न होकर भक्तिनिष्ठ थी फलतः इस काल को भक्तिकाल नाम ही दिया गया है।

उत्तर मध्य काल में भी भक्तिकाल का सर्वथा लोप नहीं हुआ अनेक भक्त कवि 18वीं, 19वीं शती में उत्पन्न हुये किन्तु रीतिकाल के प्राचुर्य ने भक्ति को ढक लिया था। हिन्दी साहित्य में रीतिकाल का प्रधान रूप से उद्भव कब आरम्भ हुआ और कब तक वह अखण्ड एवं अबाधा गति से प्रवाहित होता रहा तो यही देखा जाता है कि भक्तिकाल में दो प्रकार के कवियों रीतिकाल प्रणयन में अभिरूचि प्रदर्शित की थी। एक तो भक्त कवि जिन्होंने कृष्णभक्ति का संबल लेकर (अलंकार) नायिका भेद

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

को स्वीकार करके रीतिकाल का अप्रत्यक्ष रूप से प्रणयन किया। सूरदास की साहित्यलहरी ग्रंथ नायिका भेद के साथ अलंकारो का भी वर्णन करने वाला है। 'नंददास' की 'रसमंजरी' नायिका भेद का ग्रंथ है इसे उन्होंने स्वयं स्वीकारा है–

रस मंजरी अनुसारी के नंद सुगति अनुसार।
वरनत वनिता भेद जंह, प्रेमसार निस्तार।

दूसरे कवि रीतिकाव्य प्रणेता वे कवि हैं जो रस अलंकार आदि का व्यांग निरूपण में ही प्रवृत्त हुए थे। संवत 1598 में कृपा राम थोड़ा बहुत रस–विरूपण भी कर चुके थे। उसी समय के लगभग बराबरी के मोहनलाल मिश्र ने श्रृंगार सागर नामक ग्रंथ श्रृंगार संबंधी लिखा नरहरि कवि के साथी करनेस कवि ने कर्पाभरण, श्रुतिभृषण और भवभूषण नामक तीन ग्रंथ अलंकार सम्बन्धी लिखे। रस विरूपक और अलंकार निरूपण का इस प्रकार सूत्रपात हो जाने पर केशवदास जी ने काव्य के सब अंगों का निरूपण शास्त्रीय पद्धति पर किया इसमें संदेह नहीं कि काव्य रीति का सम्यक समावेश पहले आचार्य केशव ने ही किया, पर हिन्दी में रीति ग्रन्थों की अविरल और अखण्डित परम्परा का प्रवाह केशव की कविप्रिया के प्रायः 50 वर्ष बाद चला और वह भी एक भिन्न आदर्श को लेकर केशव के आदर्श को लेकर नहीं जिसमें की पुराने आचार्यों या यह उद्भव के समय में अलंकार और अलंकार के भेद नहीं हुआ था पर परवर्ती आचार्य में अलंकार और अलंकार्य में भेद नहीं हुआ था पर परवर्ती आचार्य में भेद हो गया। हिन्दी के अलंकार ग्रंथ अधिकतर चन्द्रालोक और कुवलयानन्द के अनुसार प्रेषित हुए। कुछ ग्रन्थों में काव्य प्रकाश और साहित्यदर्पण का भी आधार पाया जाता है। काव्य के स्वरूप और अंगों के संबंध में हिंदी के रीतिकार कवियों ने संस्कृत के अपने परवर्ती ग्रन्थों का मत ग्रहण किया। इस प्रकार दैवयोग से संस्कृत साहित्य शास्त्र के इतिहास कभी संक्षिप्त उद्विखी हिन्दी में आ गई। हिन्दी रीति ग्रंथों की अखण्ड परम्परा को अधिकांश विद्वान चिन्तामणि त्रिपाठी से चलवी जानते हैं। अतः रीतिकाल का आरम्भ उन्हीं से माननी चाहिए। चिंतामणि संवत 1700 के आस पास काव्य विवेक कुलकल्पतरू और काव्य प्रकाश को तीन ग्रंथ लिखकर काव्यों का पूरा निरूपण किया और पिंगल या छंद शास्त्र पर भी एक पुस्तक लिखी जिसके बाद लक्षण ग्रंथों की भरमार लगने लगी।

रीतिकाल की उत्तरसीमा का प्रश्न भी विचारणीय है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के आगमन से पूर्व तक रीतिकाल की उत्तरसीमा निर्धारण करने में एक आपत्ति भारतेन्दु युग में भी रीतिकाव्य रचना करने वाले कवियों की विशाल परम्परा मिलती है संवत 1950 तक ऐसे रससिद्ध कवि हुए जिन्होंने रीतिबद्ध काव्य शैली को स्वीकार कर वैसी ही उत्कृष्ट रचना की जैसी रीतिकालीन कवि करते थे। उस समय की काव्यात्मा श्रृंगार से हाकर सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना में प्रविष्टि हो गई थी।

सन् 1857 के क्रांति के बाद एक विशेष प्रकार की राजनैतिक चेतना देश में व्याप्त हो गयी थी फलतः श्रृंगार प्रधान रीति कविता का स्थान गौड़ होने लगा था काशी, रीवा, अयोध्या, मथुरा, प्रयाग आदि साहित्यिक केन्द्रों के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर श्रृंगार परम्परा समाप्त होने लगी थी। प्राचीन रीति साहित्य का जो प्रभाव शेष रह गया था उसी के अन्तर्गत कुछ परम्परावादी कवि उसका पिण्टप्रेषण मात्र करने में लीन थे। अर्थात में हम इस काल को हम रीति श्रृंगार का उपसंहतिकाल कह सकते हैं। परिणाम की दृष्टि से सं0 1900 तक विपुल रीति साहित्य प्रतीत हुआ किन्तु उसका प्रभाव सीमित हो गया था। क्योंकि वास्तव में यथार्थ रीतिकाल का विस्तार तो सं0 1700 से संवत 1900 तक ही है।

रीतिकाल नाम की ओर देखते हैं तो उसमें रीति अर्थात रस, अलंकार काव्य शक्ति नायक नायिका पिंगल आदि काव्य रीति अवश्य विषय ही है, पर रीति काव्य वाह्यार्थ का ही बोध है अभ्यांतर का नहीं। उस काल का अभ्यांतर बोधक श्रृंगार था। थोड़ी सी वीर रस थी। शुद्ध भक्ति की रचनायें श्रृंगार की सीमा में प्रश्रय नहीं पाती। जिन्होंने नव रस का प्रतिपादन लक्ष्य बनाया उन्होंने भी श्रृंगार की व्यापक प्रवृत्ति के कारण विस्तार से श्रृंगार का ही वर्णन किया।

रीति का अर्थ– रीतिरात्मा काव्यस्य की घोषण करने वाले आचार्य वामन इस सम्प्रदाय के आचार्य थे। उनके अनुसार रीति का अर्थ है "विशिष्ट पद रचना विशिष्ट पद रचना विशिष्ट का अर्थ है गुण सम्पन्न– विशेषों गुणात्मा गुण से तात्पर्य है काव्य के शोभाकारक धर्म काव्यशोभा या कतार गुणः। इस प्रकार वामन के अनुसार रीति का परिभाषा हुई– काव्य शोभाकारक शब्द और अर्थ के धर्मों से युक्त पदरचना को रीति कहते हैं।

तत्पश्चात आनन्दवर्धन में रीति के पर्याय संघटना शब्द माना है। वामन का पद रचना और आनन्दवर्धन का संघटना शब्द तो पर्याय ही है। अंतर केवल सम विशेषणों में है जो दोनों आचार्यों के विभेदक दृष्टिकोणों का परिचायक है। निष्कर्ष यदि पद रचना में शब्दगत और अर्थगत शोभा कारक धर्मों अर्थात् गुणों का समावेश हो गया तो उसकी सिद्ध हो गयी। आनन्द वर्धन के उपरान्त रतिशेखर एवं उनके अनुकरण पर भोज श्रृंगार प्रकाश में रीति को वचन विन्यास क्रम, कहा है जो पदरचना और अथवा घटना का ही पर्याय है। कुंतक ने रीति के स्थान पर मार्ग शब्द का प्रयोग किया है जिसे इन्होंने कवि प्रस्थान हेतु भी कहा है। भोज ने सरस्वती कंठामरण में रीति शब्द की व्युत्पत्ति रीड़ गतो धातु से बताकर इस शंका

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

का समाधान भी प्रकारान्तर से कर दिया है। रीति शब्द मार्ग पंथ आदि का पर्याय क्यों माना जाता है।

वैदर्भादिकृताः पन्थाः काव्ये मार्गा इतिस्थिताः।
रीड़गताविति धातोस्सा व्युत्पत्या रीतिरूच्यते।।

अर्थात् वेदर्भी पंथा (पंथ) काव्य में मार्ग कहलाते हैं और गत्यर्थ रीड़ धातु से निष्पन्न होने के कारण वे ही रीति कहलाते हैं।

रीति मार्ग का वाचक ठहरता है रस अकेले ही शब्द के दो पृथक शब्द कहे जा सकते हैं किन्तु वास्तव में यह अलगाव किसी मौलिक विभेद का द्योतक न रहकर व्यवहारिक विकास का ही परिणाम रहा है। मुख्य बात यह है कि व्यक्ति या वर्ग विशेष अपने भावों की अभिव्यक्ति जिस विशेष रूप में करता है उसकी विशेषतायें जब दूसरों के लिए अपनी अभिव्यक्ति व्यापारगत अनुकरण और अनुसरण का लक्ष्य हो जाती है तो उसकी विद्यात्री पद्धति विशेष लोक व्यवहार में मार्ग शब्द से ही अभिहित होता है दण्डी का कथन है कि काव्य रचना के तो ये दो मार्ग गौड़ी और वेदर्भी ही होते हैं पर कवि में आश्रित होने के कारण इनमें अनन्त भेद हो जाते हैं।

हिन्दी में रीति का प्रयोग समान्यतया लक्षण ग्रन्थों के निर्माण के लिए ही होता है। डा0 नगेन्द्र के शब्दों में– जिन ग्रन्थों में काव्य के विभिन्न अंगों का उन्हें रीतिग्रंथ कहते हैं और जिस वैज्ञानिक पद्धति पर जिस विधान के अनुसार यह विवेचन होता है उसे रीतिशास्त्र कहते हैं। संस्कृत में इसे अलंकार शास्त्र काव्य शास्त्र कहते हैं। सम्भवतः आरंभ में हिन्दी में रीति शब्द का मूल संकेत रीति सम्प्रदाय से ही लिया गया है परन्तु वास्तव में इसका प्रयोग सर्वथा सामान्य और व्यापक अर्थ में ही हुआ है। यहॉ काव्य रचना संबंधी नियमों के विधान को ही समग्रतः रतिनाम दे दिया गया है। जिस ग्रंथों में रचना संबंधी नियमों का विवेचन है वह रीतिग्रंथ और जिस काव्य की रचना इन नियकों से आबद्ध है वह रीति काव्य है। स्वभावतः इस काव्य में वस्तु की अपेक्षा रीति अथवा आकार की आरंभ से उत्कर्ष की अपेक्षा शरीर के अलंकरण की प्रधानता मिली है।

इस प्रकार रीति शब्द का यह विशिष्ट प्रयोग हिन्दी का अपना प्रयोग है और यह नया नहीं है। रीतिकाल के अनेक कवियों ने प्रायः आरम्भ से ही काव्य को रीति, अलंकार रीति कविता रीति आदि का प्रयोग स्पष्ट रूप से इसी अर्थ में किया है।

1. ताही को रति कहत हैं रस ग्रंथन की रीति।
2. काव्य की रीति सीसि सुकविन सो देखि सुनी।
3. अपनी अपनी रीति के काव्य और कवि रीति।
4. कवित्त रीति कहु कहत हैं व्यंग्य अर्थ चित्त लाभ – प्रताप सिंह (व्यंग्यार्थ कौमुदी)
5. समुझे वाला बालकन वर्णन ग्रंथ अगाथ।

यद्यपि हिन्दी के रीति शब्द संस्कृत के काव्य शास्त्र या अलंकार शास्त्र का बुत कुछ समनार्थी कहा जाता है। क्योंकि संस्कृत के काव्य शास्त्र की भांति इसमें भी काव्य रचना की विधि वर्णित होती है। लेकिन संस्कृत के काव्यशास्त्र की परिष्कृत रचना शैली और गंभीर विवेचना पद्धति हिन्दी के रीति ग्रंथों में नहीं दिखाई पड़ती है। डा0 बच्चन सिंह के शब्दों में– यद्यपि हिन्दी के रीति ग्रंथकारों के लक्षण निरूपण में संस्कृत के शास्त्रीय ग्रंथों को ही मूल आधार माना है फिर भी उनमें विवेचन की वह सूक्ष्मता और गहराई नहीं आ सकी जो संस्कृत में दिखाई पड़ती है। संस्कृत के पूर्ववर्ती काव्य शास्त्रों में उदाहरण साधारणतयः विभिन्न कवियों की कृतियों से संग्रहित किये हैं किन्तु संस्कृत के परवर्ती अलंकार ग्रंथ में उनके रचयिताओं ने स्वरचित लक्षण उदाहरण ही रखे। हिन्दी के रीति ग्रंथों में इन्हीं परवर्ती अलंकार ग्रंथों का अनुकरण दिखाई पड़ता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हिन्दी का रीति शब्द न तो संस्कृत के रीति सम्प्रदाय से संबद्ध है और न तो रीति ग्रंथ संस्कृत के अलंकार शास्त्र या काव्य शास्त्र का समनार्थी है हिन्दी में यह अपने विशिष्ट अर्थ में प्रयोग हुआ है।

सामंतीय जीवन एवं परिस्थितियां– मध्यकालीन राजनीतिक व्यवस्था में राजतंत्र तथा सामंतवाद के प्रधान्य में कला तथा साहित्य को एश्वर्य और अलंकार के रूप में स्वीकार किया। ऐसी स्थिति में साहित्य सर्जना का क्षेत्र अभिव्यंजनागत चमत्कार और आश्रयदाता के रूचि तक ही सीमित होकर रह गया। औरगंजेब की संकीर्णता ने दिल्ली से हिन्दी का उन्मूलन अवश्य किया परन्तु हिंदी जन भाषा होने के कारण धर्म और जीवन के अन्य व्यापक आधारों के सहारे पनपती रही। सामंतीय वातावरण में जो काव्य पल्लवित हुआ उसमें चाहे स्थूल श्रृंगार की नग्नता कितनी भी हो किन्तु तथ्य को भी हमें स्वीकारना पड़ेगा कि प्राचीन हिन्दी की पुनः स्थापना का श्रेय भी तत्कालीन संरक्षण की प्रदर्शन प्रियता तथा श्रृंगार प्रधान दृष्टि को ही था।

डॉ0 नगेन्द्र के शब्दों में "पुरातन के इस नूतन उद्घाटन के पीछे यदि प्रदर्शनवृत्ति न होकर जिज्ञासुवृत्ति होती तो हिन्दी की रीतिकाव्य परम्परा भारतीय काव्यशास्त्र के इतिहास में एक अपूर्व घटना होती, परन्तु पराधीन देश का वर्तमान ही

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

नहीं अतीत भी गुलाम बन जाता है।"

रीतिकाल का वातावरण एक सामंतीय वातावरण था देश छोटे–बड़े सामन्तों में बंटा हुआ था। रीतिकालीन कविता ऐसी परिस्थिति में ही ललित पालित हुई और उसके अंत के साथ यह भी समाप्तप्राय हो गयी। रीतिकाल को आरम्भ शाहजहां के शासनकाल के उत्तरार्थ से होता है। प्रदर्शन प्रधान, रीत, वद्ध काव्यशैली तथा काव्य में श्रृंगारपरक जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति का श्रेय काफी सीमा तक इस युग में प्रधान इसी प्रदर्शनवृत्ति को है। देशव्यापी शान्ति तथा कला की उन्नति और विकास में बहुत सहायक हुई। अनेक कवि, संगीतज्ञ, चित्रकार और वस्तु शिल्पी उसके दरबार में शरण लेने आते थे और प्रतिभावान कलावंतो को निराशा नहीं लौटना पड़ता था।

शाहजहां के यशस्वी होने की आकांक्षा तथा सहिष्णुता के फलस्वरूप शाहजहां के शासन में भारतीय साहित्य एवं कला का संरक्षण मिलने लगा तथा मुगल दरबारी काव्य का प्रभाव हिन्दी साहित्य पर पड़ने लगा। मुगल दरबार तथा प्रभाव से सामंतीय संरक्षण में जो हिन्दी कविता पल्लवित हुई उसे फारसी की स्पर्धा में रखे जाने योग्य तथा अनुशोधन अपने देश की साहित्यिक परम्पराओं में करना पड़ा। गजल की श्रृंगारिकता, गुलो–बुल बुल, शीरीफरहाद और लैला मजनू के साहसिक प्रेम की परंपरा भारत में नहीं थी। भारतीय नायक के आदर्श राम और कृष्ण थे नायिकाओं में सीता व राधा। फारसी काव्य की विलास नयी नायिकाओं की तुलना में नायिका भेद की श्रेणियों में वद्ध नारी सौंदर्य को ही रखा जा सकता था।

किन्तु शाहजहां के शासन के उत्तरार्थ काल में मुगल वैभव का दमन होना शुरू हो गया और उसी समय से सर्वत्र अशांति और भ्रष्टाचार की शुरूआत हुई। शाहजहां के बड़े बेटे दारा की हत्या के बाद सहिष्णुतता और उदारता का नाम मिट गया। भाईयों की हत्या के बाद औरंगजेब की कट्टरता तथा धर्मांधता ने उसके लिए अनेक समस्यायें उत्पन्न कर दी। मुगल साम्राज्य के प्रत्येक नाम में उठती हुई असंतोश और क्रांति की चिनगारी दिन पर दिन भड़कती गयी। ऐसी स्थिति में कला और संस्कृति की दशा बड़ी ही शोचनीय हो गई। ऐसी गंभीर परिस्थिति में रसात्मक कृतियों के लिए औरंगजेब की शुष्ट व्यक्तित्व में कोई जगह नहीं थी और न ही तत्कालीन अव्यवस्था में राजकीय संरक्षण की संभावना। मुगल दरबार में संरक्षण के अभाव के कारण अनेक कला विदों ने विभिन्न सामंतों तथा नरेशों की शरण ली क्योंकि उनके दरबार में कलावंतो तथा कवियों की उपस्थिति उनको गौरवान्वित करती थी। मुगल दरबार के अनुकरण पर अपने दरबार को अलंकृत करने की प्रवृत्ति हमें उस समय के अनेक नरेशों तथा सामंतों में दिखाई पड़ती हैं। जहां मुगल दरबार में भारतीय दूरानी काव्य परम्पा को प्रश्रय मिला वहां राजस्थानो के नरेशों तथा सामंतों की छत्रछाया में हिन्दी कविता का दरबारी रूप पनपा। ओरछा, कोटा, बूटी, जयपुर, जोध ापुर और यहां तक कि महाराष्ट्र के राजदरबारों में भी वही प्रदर्शन प्रधान और श्रृंगारपरक जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति में काव्य धारा चलती रही तत्पश्चात औरंगजेब के मृत्यु के पश्चात उनके उत्तराधिकारी के संरक्षण कला साहित्य और संगीत पनपी तो अवश्यक परन्तु गंभीर प्रेरक तत्वों के कारण उसका स्तर छिछला ही बना रहा। वह गहराई न आ सकी।

रीतिकाल के आरम्भ से ही दिल्ली दरबार का आकर्षण कम होने लगा था औरंगजेब की मृत्यु के उपरान्त साम्राज्य की शक्ति और उसके राज्य का विकेन्द्रीकरण बड़े वेग से आरम्भ हो गया था और कवि चित्रकार, गायक, शिल्पी सभी राजाओं और रईसों के यहां आश्रय की खोज में भटकने लग गये थे। राजा और रईस अधिकतर हिन्दू या हिन्दू रीति रिवाजों से घुले मिले हिन्दी रसिक मुसलमान थे। रीतिकालीन कविता पूर्वरूप से सामंतीय वातावरण में पल्लवित हुई क्योंकि 17वीं शताब्दी विक्रमी में मुगल वैभव अपनी चरम सीमा पर था मुगल सम्राटों को तो संधि–विग्रह, अर्तविद्रोह के उपद्रव आदि में संलग्न रहने से एश्वर्य के उपयोग के साथ–साथ कुछ उद्योग और पराक्रम का सहारा भी लेना पड़ता था परन्तु उनके अधीनस्थ राजे–महाराजे इन चिंताओं के अपेक्षाकृत अधिक मुक्त रहने के कारण बहुत कुछ निश्चितताापूर्वक वैभव और विलासका सुख उठाते थे।

आत्मनिर्भरता देश भक्त एवं प्राचीन कुल मर्यादा जो शताब्दियों से राजपूतों के विशेष गुण थे। धीरे–धीरे समाप्त हो रहे थे। उनमें दृढ़ मुगल दरबार की नजाकत और प्रवेश कर गया। राजस्थानी जौहर का स्थान भ्रष्टाचार ने तथा सबल पौरूष का स्थान अनैतिक विलास ने लिया था। कला का महत्व जीवन के उद्दीपन के रूप में होता था सवाई राजा जय सिंह के उत्तराधिकारी अपने–अपने घरों में घुंघरू बांधकर नृत्य करते थे। कोई अनवेषण एवं दूरदर्शी सामंत नहीं रह गया था इनके स्थान पर भिरती, नाई, दर्जी, महावत जैसे निम्न वर्ग के मौलिक स्तर के व्यक्ति उनके विश्वास पात्र बन गये थे। इस प्रकार की आररूदाताओं की संरक्षा में रहने वाले कवि के लिए स्वाभाविक था कि वह अपने वैदग्ध और कल्पना के बल पर उनके भोगपरक जीवन के वैभव विलास के अतिरंजनापूर्ण चित्र अंकित करे। यही कारण है कि रीतिकाल में कला का विकास इन्हीं राजाओं के रूचि के अनुसार हुआ। डा0 नगेन्द्र ने कर्नल टाड़ के उद्धाप को अपने वृहद इतिहास में दिया है। अफीम के मद मे ंटापे की धुन पर मस्त होकर राजपूत स्वर्गिक आनन्द का अनुभव करते थे।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

अधिकांशकर्ता दरबारी कवि थे कोई देशी नरेशों की तो कोई विदेशी या मुसलमान बादशाहों या दीवानों की। देशी दरबारों या सभाओं में हिंदी के कवियों को चमत्कार दिखाने में संस्कृत के पंडितों से पड़ता था और मुसलमानी दरबारों में भी अपना रंग जमाने में में फारसी, उर्दू शायरों से मोर्चा लेना पड़ता था। संस्कृत वाले श्रृंगार की मुक्तक रचना सामने लाते थे जिसके वे नायक–नायिका श्रतु, वर्णन, रूप, कथन आदि की छटा दिखाते थे, हिन्दी वाले को भी वही करना पड़ता था। रीतिकाल के सामंत विलास के सभी उपकरणों को रसालाओं एवं उपकरणों को एकत्र करने में प्रयत्नशील रहते थे जिनमें सुबह सुराही और प्याला के साथ तान–तुक ताला और गुणीजनों का श्रृंगारिक सरस काव्य भी सम्मिलित था। इन सभी उपकरणों में कविता सबसे महत्वपूर्ण उपकरण थी वह केवल विनोद का रसाला ही नही थी एक परिष्कृत बौद्धिक आनन्द का साधन तथा व्यक्तित्व का श्रृंगार भी थी। ये राजा और रईस अपनी संस्कृति और रूचि को समृद्ध एवं विस्तृत करने के लिए सिद्ध व्युत्पन्न कवियों का सत्संग और काव्य का अस्वादन अनिवार्य समझते थे उसमें उनका व्यक्तित्व कलात्मक एवं सुसंस्कृत बनता था।

इस काल के अधिकांश शास्त्री इसी वही दरबारी थे कोई देशी नरेशों के यहां दरबारी करता था तो कोई मुसलमान बादशाहों के यहॉ। कोई विदेशी सरकारों का तो कोई दीवानों के यहॉ दरबारी करता अर्थात वे किसी ने किसी रूप में अवश्य दरबारी थे। देशी दरबारों या सभाओं में हिन्दी के कवियों को अपना चमत्कार दिखाने में संस्कृत के पंडितों से जोड़–तोड़, भिड़ना पड़ता था और मुसलमानी दरबारों में भी अपना रंग जमान में फारसी या उर्दू शायरों से मोर्चा लेना पड़ता था। संस्कृत वाले श्रृंगार की मुक्तक रचना सामने लाते थे जिसमें वे नायक नायिका, ऋतु वर्णन, रूपकथन आदि की छटा दिखाते थे, हिन्दी वालों को भी वही करना पड़ता था।

कवि की आर्थिक स्थिति उसके सामंतों पर ही निर्भर रहती थी। जो कवि जितनी अच्छी कविता अपने नामित के दरबार में पेश करता उसको उतनी प्रशंसा एवं अर्थ मिलता इसलिए कवि अपने उन सामंतों सरदारों के काव्य भवनों और एश्वर्यपूर्ण दिनचर्या का मोदक चित्र खींचता था उनके गगन चुंबी भवन विलास से पूर्ण तथा वैभव से दीप्त है उनमें कई खड़े और कई तल्ले होते हैं, सड़कों की ओर अनेकानेक झरोखें लगे रहते हैं कोई महल, विशेषरूप से उपरी महल चन्द्रमा की भांति श्वेत और वृत्ताकार होता है। स्फटिक शिलाओं से निर्मित उन महलों का वैभव चांदनी रात में दूध की फेन की भांति उद्वेलित हो उठता है। शीशमहलों में लगे दर्पणों के क्या कहने। उन दर्णणों में पड़ते हुए राजाओं के प्रतिबिम्ब ऐसे दीप्यमान हाते हैं मानो कामदेव समस्त संसार को जीतनेके लिए काव्यव्यूह बनाये होते हैं। मुगलशैली पर माडफानूस से सुसज्जित जगर–मगर करता हुआ ज्योति पूर्ण दिखायी देते हैं। ऐसे महलों पर उपरी तल्ले पर चढ़कर नायिका नायक की राह देखती थी और झरोखे से 'पावक झस्सी' झांक जाती थी।

एक महल के संबंध में दैव लिखते हैं–

उज्ज्वल अखण्ड खण्ड सातए महस महा,
मंडल सावरों चन्द्र मंडल की चोटही।
भीतर हूं लालनि के जालानि विसाल ज्योति,
वाहर जुहाई जगी जो तिनकी जोट ही।

कवियों ने महल का जितना सुन्दर एवं विलासमयी रूपों का वर्णन किया है, उतना ही सुन्दर महलों के बाहर के दृश्यों का भी चित्र खींचा है। डा0 बच्चन सिंह के शब्दों में सामंतीय उपवनों में रंग बिरंगे फूल खिले रहते थे। उनमें भारतीय और फारसी दोनों प्रकार के फूलों की बहार थी। भारतीय युगों में चम्पा, केतकी, बेला, जूही, कचनार कव–जपा हरिसिंगार आदि उपवन भी शोभा बढ़ा रहे थे तो फारसी फूलों में गुलाब, मोगरा, गुल्लला आदि। इन उपवनों में पुष्प–चंदन के बहाने नायक–नायिका का मिलन हो जाया करता था।

इस काल की रचनाओं से पता चलता है कि तत्कालीन रसिक बाहर निकलने से पूर्व चोवा, चन्दन, धनसार, इत्र आदि का बराबर उपयोग करते थे। बालों को प्राचीन रीति के अनुसार अगरू–धूम से धूपादित किया जाता था। वारनि बूंदि अंगारन, धूपि कै, धृप अन्ध्यारि पसारि महा है।

रीतिकाल के सामन्तों के खेलों का भी वर्णन रीतिकाल कवियों ने किया है। महल के अन्दर चौसर, गजीफा और शतरंज मुख्य थे। आज कल के पोलो और क्रिकेट की तरह पारसी गौह मैदान होता था। कबूतर की झुंड का उड़ान शिकार, हाथी की लड़ाई, पतंग आदि के खेल सामन्तीय मनोरंजन के प्रमुख अंग थे।

राजधानियों में वैभव और ऐश्वर्य के साथ–साथ काव्य शास्त्र और अन्य अनेक ललित कलाये भी केन्द्रीत हो गयी थी। कालिदास भरवि बररूचि, पतंजली वर्णन आदि किसी ने किसी राज्य सभा के रत्न राज्य विविध विधाओं को उचित प्रोत्साहन देते थे। कभी–कभी राजधानियों में कवियों के विकट प्रतिद्वन्दिता भी होती थी।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

दुर्भाग्य से रीतिकालीन कवियों में से दो एक को छोड़कर किसी को भी बड़े राज्य विश्व की छाया नहीं प्राप्त हो सकी थी। वे किसी भागीलाल जगत सिंह अथवा दठिया दराज दिल, अली अकबरखान जेसे लघु–2 तरूओं की विरल छाया में विश्राम कर रहे थे। फिर भी दरबारी रंग ढंग पर इनकी सभाएं भी संगठित थी राज सभाओं की शोभा के लिए कविताओं का कंठस्थ करना आवश्यक था।

कंठ करै सो समनि में सोभै अति अभिराम,
भयो सकल संसार हित, कविता ललित ललाम।।

स्वच्छन्द काव्यधारा के कवियों के मन में भी निहित थी–

ठाकुर सो कवि भावत मोहि जो राजसभा में बड़पन पावै।
पंडित और प्रवीनन को जोई चित्त हरै सो कवित कहावै।।

इस युग के सामंत सादारों को रिझाने और पंडितों को चमत्कृत करने की आकांक्षा के कारण कवियों को अपनी कला के प्रति अधिक जागरूक होना पड़ा। चमत्कार प्रदर्शन और बहुज्ञता दर्शन के फेर में पडत्रकर उन्हें जहां अपने सहज भावोच्छवासो पर जीवन के क्षेत्र के बाहर के मुलम्मा चढ़ाना पड़ा। वहां उनकी कविता में कृत्रिमता आ गई। किन्तु जहां पर उनकी सहज भाव उच्छवसित हुआ है, वहां रसपूर्ण काव्य सृष्टि हुई है पर इस युग की नाड़ी की पहचान पहली तरह की कविताओं द्वारा ही की जा सकती है।

हिन्दी साहित्य में यही युग ऐसा था जब कला को शुद्ध कला के रूप में ग्रहण किया गया था। अपने शुद्ध रूप में रीति कविता न तो राजाओं को उत्साहित करने की साधन थी न धार्मिक प्रचार था। भक्ति का माध्यम और न सामाजिक या राजनीतिक सुधार की परिचारिका थी। काव्य कला का अपना स्वतंत्र रूप से महत्व था।

नागर और नागरीय– लोक संसकृति की ओर ध्यान देने रीतिकालीन कवियों के पास फुर्सत ही कहां थी इसीलिए रीतिकालीन कवितायें लोक जीवन सेघुल मिल न सकी। इसके पूर्व भक्ति काल की कवितायें जन जीवन के उल्लास और अलहाद से अनुप्राणित होकर जनता में एक अजीबो गरीब उत्साह और प्रेरणा को संचारित करती रही। कबीर, सूर, तुलसी की रचनायें आज भी समान्य जनता का कंठाहार बनी हुई है। इन लोगों की रचनायें उसी समय से लेकर आजतक एक गति से लगातार चली लेकिन बिहारी, देव, पदमाकर और मतिराम इत्यादि की रचनायें एक प्रकार के परिधि से बाहर न निकल सकी। इन कवियों के कुछ कविता और सवैयो को या तो भाटो ने जीविकोपार्जन के निमित्त याद कर रखा है या मनोरंजन और रसास्वासन के लिए मध्यवर्य के रतिकों ने। रीतिकालीन कविताओं में मध्यवर्ग के अनेक कौतुहलपूर्ण घरेलू श्रृंगारिका दृश्यों की मनोरम झॉकियॉ अवश्य प्रस्तुत हुई है, किन्तु सामान्यतः कवियों की रूचि नागरिक जीवन के वैभव और विलास में ही डूबी रही ग्रामीण प्रवृत्ति में सबसे अधिक रूचि रखने वाले बिहारी गांव और उसके निवासियों एवं उनके संस्कृति के प्रति अपनी भावना अच्छी व्यक्त की है। ग्रामीण नायिका की तुच्छ साज सज्जा का उल्लेख करते हुए यद्यपि बिहारी ने उसकी मांसलता गदराये हुए शरीर और खरे उरोजनि की ओर से अपनी दृष्टि नहीं फेर है फिर भी गवांरि शब्द से उसके प्रति इनके मन का भाव व्यक्त हो जाता है। नागर संस्कृति में प्रवीण मनुष्यों के सम्मुख ग्रामीणों की हंसी उड़ाते हुये बिहारी अघाते नहीं।

वे नयहो नागर बड़े, जिन आदर तो आब।
फुल्यौ अनफूल्यौ भयौ, गवई गांव गुलाब।।
कर–लै लै सूँघि सराहि कै रहै सबै गहि मौन।
गंधी गंध गुलाब को गँवई गाहक कौन।।

पर ठीक इसके विपरीत स्वच्छन्दमार्गी कवियों पर दरबार का जादू बहुत कम चढ़ सका था। इसलिए लोक जीवन के विविध विषयों स्वभावों एंव हाव–भावों के प्रति इनकी आस्था और आसक्ति खुली रही उसकी उपेक्षा या उपहास करने की इच्छा कभी नहीं की।

घनानन्द मूलतः कृष्णोपासक थे–

अतः ब्रजभूमि को लोकसंस्कृति की सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों का वर्णन घनानन्द की रचनाओं में मिलता है। कृष्ण की विविध लोक लिलायें, गोचसरण वेणुवादन, दानलीला, माखनचोरी, रासलीला आदि का वर्णन स्वच्छंद रूप में इनके काव्य में दृष्टिगोचर होता है।

ब्रज की प्राकृतिक सौंदर्य के बीच ग्रीष्म, पावस एवं बसन्त आदि ऋतुयें, होली, दीपावली, हिंडोल, झूला आदि त्याहारों का उत्साह इनकी लोक दृष्टि के अंग बन सके हैं। कृष्ण और राधा के मधुर मिलन एवं लीला मय रूप के उपासक होने के कारण राय रंजित होली के अत्यंत हार्दिक चित्र इनके काव्य में मिलते हैं– एक उदाहरण–

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

ब्रजमाची सरस धमारि होरी रंग रहयौ,
घोष नागरी फगुवा मांगन आई जसुमति धाम।
प्रेम भरे रंगभगे जगमगे निरखे मोहन श्याम।
गावत गारी दै दै तारी गति सोऽफहि बजाय।।
घेरि लिये गहि किये आपबस कान्ह–किसोर चकोर,
काजर दै मुख भीडि गुलालहि इगराति फगुवाहेत,
सैननि ही मैं सुधर सावरे हा हा करि हंसि देत।

इसमें होली का कितना उल्लासपूर्ण सजीव और रागमय चित्र है हांव की सुन्दर योजना से गोपियों का ह्रदयस्थ भाव प्रभाव पूर्ण हो गया है। कान्ह किसोर को घेर कर लड़ना झगड़ना और फिर काजल और गुलाब का मसलना रागरंजित तथा मर्मस्पर्शी है।

कृष्णलीला की लीला स्थली से ग्राम्य प्रकृति के वर्णन का महात्मा मूल बढ़ गया है। घनानन्द को ग्रामीण जीवन से कोई दुराव नहीं था। गांव की प्रकृति और वहां के रीति रिवाजों का जो वक्त चित्त इनके काव्य में मिलता है– प्रीति पावस, सरस वसंत गोकुल गीत ब्रजस्वरूप आदि के भक्तिपरक लघु प्रावंधो का प्रणयन भी इन्होंने किया है। लोक प्रचलित व्यहारों में भी इनकी रूचि है– वसंत पंचमी, कजली, तीज, शरदोत्सव दीवाली आदि। कजली, तीज आदि पर भारतीय स्त्रियों को मेंहदी रचाकर अपनी खुशहाली आदि का परिचय देती है। घनानन्द की राधा की मेंहदी रचाकर अपने अंतरंग उल्लास का प्रदर्शन करती है–

बरसाने की तेजि सुहाई। हरियारी सबहिनि मन भाई।
कीरति उबरि नहवाई राधा। अपनी लडिलरी हित–साधा।
मेंहदी रची रूचिर कर पाइनि। ललित लली कौं सजति बंजाईन।

इस प्रकार लोकोल्लास की महाकवि ने घनानन्द का मास स्नान कर सका है और अपनी भक्ति की सीमा के भतर सांस्कृतिक आस्थाओं को उन्होंने स्वीकारा है। घनानन्द ने गाय को चराने का गांव का वर्णन किया है–

गैयनि चराय चराय गौ गहि करित कान्ह केतेऊ काम।
गिरि गोवर्धन घटिया घेरत हेरत हौ नव वाम
हौ जानति जैसे दौ मोहन मोहन लागत सोहन श्याम।
आनन्दघन कहा झूमैं आवत घर जान देहु किनि
फिरत बरावत धाम।

रीतिबद्ध रीतिसिद्ध रीतिमुक्त काव्यधारायें– श्रृंगार काल में रीतिबद्ध रीतिसिद्ध रीतिमुक्त तीनों प्रकार के रचनाओं के प्रणेता हुए और अपने–अपने क्षेत्रों में ख्याति अर्जित की।

जिन रचयिताओं ने काव्यांगो के अनुसार परंपरायुक्त नियमों का पालन कर काव्य की रचना की उन्हें लक्षण ग्रंथकार कवि रीतिकालीन कवि कहा गया है। जिसमें देव, पद्माकर, भूषण, मतिराम प्रमुख है। दूसरे प्रकार के कवि स्वच्छन्द कहलाये क्योंकि उन्होंने उन रीति रिवाजों को जो कि लक्षण ग्रंथकार लेकर चलते थे। इन लोगों ने तोड़कर काव्य रचना की ओर स्वच्छन्द विचरण करने लगे। काव्य के अंग रीति रस अलंकार वक्रोक्ति आदि का ध्यान नहीं दिया क्योंकि ये अनुभूत प्रेरित थे, जबकि रीति कालीन कवि लीक पर चलने वाले थे। भूषण ने तो यहां तक कहा है–

भूषण विनु न विराजई कविता बनिता मित्त।

पर इसमें करारा जवाब देते हुए ठीक विपरीत में घनानन्द की यह उक्ति उन्हें स्वयं बताती है–

लोग हैं त्यागि कवित बनावत मोहि तो मेरो कवित बनावे। दोनों की बीच की कड़ी रीति सिद्ध कहलायी। अर्थात् न पूर्णरूप से काव्यांगो का रहा और न ही पूर्ण रूप से रीतिमुक्त हुआ बल्कि बीच की कड़ी से ही अपने को जकड़ कर रखा और दोनों तरफ का आनन्द उठाया। ऐसे कवियों को विद्वानों ने रीतिसिद्ध की परिधि में रखा है। रीतिसिद्ध धारा के कवि बिहारी हैं। अतः यह सिद्ध हो गया है कि रीतिकाल के अन्तर्गत तीन तरी के काव्य का प्रणयन हुआ।

*****